अल्लाह ही के होकर रहो

ख़ुर्रम मुराद

अनुवाद

नसीम ग़ाज़ी फ़लाही

अल्लाह ही के होकर रहो

'बिसमिल्लाहिर्रहमानिर्रहीम'

अल्लाह के नाम से जो बड़ा मेहरबान, निहायत रहमवाला है।

वक़्त क्या चीज़ है ?

यह एक ऐसी पहेली है जिसकी तह तक आज तक इनसान नहीं पहुँच सका है। जब ज़िन्दगी की धारा बहती है तो इनसान सोचता है कि वक़्त क्या है ? फ़ल्सफ़ियों (दार्शनिकों) ने भी कोशिशें कीं, शायरों ने भी अपने अंदाज़ में कुछ कहा और आम इनसानों ने भी, लेकिन किसी की समझ में यह नहीं आता कि वक़्त की हक़ीक़त क्या है ? अल्लाह के नबी (सल्ल.) के इरशाद के मुताबिक़, वक़्त है ही ऐसी चीज़ जिसकी हक़ीक़त किसी की भी समझ में नहीं आ सकती। लेकिन कुछ चीज़ें हम ख़ूब जानते और पहचानते हैं। मिसाल के तौर पर ख़ुशी के लम्हे हों तो पर लगाकर उड़ जाते हैं। दर्द, ग़म और परेशानी के लम्हे हों तो ऐसा महसूस होता है कि टल के नहीं देते। इसी तरह कभी कुछ लम्हों में बरसों का काम हो जाता है और कभी सालों गुज़र जाते हैं मगर कुछ लम्हों की भी पैदावार हाथ नहीं आती। यह तो अल्लाह का वह राज़ (भेद) है जिसे वही जानता है। उसने ख़ुद ही कहा है कि हमारा एक दिन उन हज़ार सालों के बराबर है जिनसे तुम वक़्त शुमार करते हो और कहीं फ़रमाया कि हमारा एक दिन पचास हज़ार बरस के बराबर है।

अजीब हक़ीक़त

घड़ी एक पैमाना है जो वक़्त बताती है, मिनटों, घंटों और दिनों में– यह एक मशीनी पैमाना है। लेकिन वक़्त के कुछ पैमाने दूसरे भी हैं, जिनमें एक रात हज़ार महीनों के बराबर भी हो सकती है और एक लम्हे की ग़फ़लत मंज़िल को सदियों दूर कर सकती है। वक़्त का यह वह पैमाना है जिससे हम सब ख़ूब वाक़िफ़ हैं, लेकिन इसकी हक़ीक़त और इसके भेद को हम नहीं समझ सकते। इसी पैमाने ने रमज़ान मुबारक के महीने को, उसकी रातों और दिनों को एक अजीब हक़ीक़त में बदल दिया है। एक फ़र्ज़ सत्तर फ़र्ज़ के बराबर हो जाता है। आमाल, कोशिशें और जिद्दोजुहद एकदम दूसरा ही रंग इख़्तियार कर लेती हैं। एक नफ़्ल का सवाब फ़र्ज़ के बराबर हो जाता हैं, जो शायद आम दिनों में किसी लम्हे, किसी हिसाब से, किसी मसलक के तहत और शरीअत के किसी भी फ़ार्मूले से मुमकिन नहीं है।

रमज़ान मुबारक वह महीना है जिसमें एक रात ऐसी आती है जो हज़ार महीनों से बेहतर है। फ़रिश्ते अल्लाह के हुक्म से इस रात में नाज़िल होते हैं और जो कुछ इस रात में पाया जाता है वह आम हालात में मुमकिन नहीं। वैसे तो हर रात में एक घड़ी ऐसी आती है जिसकी ख़बर नबी (सल्ल.) ने दी है कि जब अल्लाह अपने बन्दों से और अपने चाहनेवालों से क़रीब आता है और पुकारता है कि "है कोई जो मुझसे माँगनेवाला हो, मैं उसे दूँ। है कोई जो मुझसे सवाल करनेवाला हो, मैं उसका सवाल पूरा करूँ और है कोई जो अपने गुनाह माफ़ कराना चाहे, मैं उसके गुनाह माफ़ करने के लिए मौजूद हूँ।"

हममें से जो भी अल्लाह पर ईमान रखता है वह किसी न किसी दर्जे में अपने दिल में छिपी ज़ाहिर या खुली यह ख़्वाहिश ज़रूर रखता है कि उसे अल्लाह का क़ुर्ब (सामीप्य) नसीब हो; वह उससे मुहब्बत करे और उसकी कोशिशों को क़बूल फ़रमाए। टूटे-फूटे आमाल, दिल और ज़िन्दगियाँ रखने और हज़ार ठोकरें खाने के बावजूद यह तमन्ना दिलों के अन्दर मचलती रहती है। वह, पालनहार ख़ुदा, तो ख़ुद तैयार बैठा है, बस

शर्त यह है कि हम यह जान लें कि वह हमसे क्या चाहता है और उसे क्या मतलूब है ? वह क्या चीज़ है जिससे उसका कुर्ब, उसकी मुहब्बत, उसकी निगाहों में मक़बूलियत और उसका वह बड़ा इनाम हमारे हिस्से में आ सकता है जो उसने अपने बन्दों के लिए तैयार कर रखा है ? अगर हम वैसे ही बन जाएँ जैसा वह चाहता है तो यक़ीनन उसका क़ुर्ब (सामीप्य) हमें हासिल होगा।

अल्लाह क्या चाहता है ?

अल्लाह क्या चाहता है? इसका एक जवाब तो बहुत तफ़सील से दिया जा सकता है। इसके लिए दीन की, मसले-मसाइल की और अख़्लाक़ी नसीहतों की किताबें भरी हुई हैं, मगर एक मुख़्तसर जवाब जो क़ुरआन मजीद ने दिया है वह यह है कि तुम सिर्फ़ अल्लाह के बन जाओ और सिर्फ़ उसी के होकर रहो। यही राह उसकी नज़र में क़बूलियत और महबूबियत की राह है। इसके लिए उसने 'हनीफ़' (सत्यनिष्ठ और यकसू) होने का मुतालबा किया है। दावत दी है, पुकारा है और बार-बार कहा है कि इबादत करो तो हनीफ़ बनकर करो। अल्लाह की तरफ़ रुख़ करो तो हनीफ़ बनकर करो। सिराते-मुस्तक़ीम (सीधे रास्ते) की तरफ़ रुख़ करके चलो तो हनीफ़ बनकर चलो। हज़रत इबराहीम (अलैहि.) के रास्ते को इख़्तियार करो तो हनीफ़ बनकर करो। 'हनीफ़' का मतलब यही है कि यकसू हो जाओ। शाह अब्दुल क़ादिर साहब (रह.) के शब्दों में, "अल्लाह के हो रहो।" यानी उसके हो जाओ और किसी के न हो। तुम्हारा दिल, तुम्हारी ज़िन्दगी, तुम्हारे आमाल, तुम्हारे मक़सद, तुम्हारी कोशिशें, तुम्हारी जिद्दोजुहद, सब सिर्फ़ उसी के लिए हों, किसी और के लिए न हों। यह सीधा, साफ़ और कुछ शब्दों का नुस्ख़ा है जो अल्लाह ने बार-बार बयान किया है –

> "और उनको इसके सिवा कोई हुक्म नहीं दिया गया था कि अल्लाह की बन्दगी करें अपने दीन को ख़ालिस करके, बिलकुल यकसू होकर।" (क़ुरआन, 98:5)

हमारा मक़सद

अल्लाह का बन जाना, अल्लाह का हो जाना और अल्लाह ही का बनकर रहना यही हमारा मक़सद होना चाहिए और इसी को हासिल करने की हमें कोशिश करनी चाहिए। इसी से उसका क़ुर्ब हासिल हो सकता है। यह क्या चीज़ है ? अल्लाह के लिए यकसू होने का क्या मतलब है ? उसी का हो रहना और उसी का बन जाना, इसकी हक़ीक़त क्या है ? यह कोई बड़ा मुश्किल सवाल नहीं है, इसलिए कि हम दुनिया में रोज़ यह देखते हैं कि जो किसी का बन जाता है और उसी का हो रहता है, फिर उसकी क्या कैफ़ियत और हालत होती है और उसकी ज़िन्दगी का क्या नक़्शा और रंग होता है। दिल किस तरह उसी के ध्यान में, उसी की फ़िक्र में उसी के काम में, उसी की मरज़ी पूरी करने में और उसी से मुहब्बत करने में लग जाता है।

यहाँ बार-बार हनीफ़ (सत्य निष्ठ और यकसू) होकर रहने को कहा गया है। हनीफ़ का रंग सबसे पहले हनीफ़ हज़रत इबराहीम (अलैहि.) के ज़िक्र के बग़ैर मुकम्मल नहीं हो सकता। क़ुरआन मजीद ने जब भी हनीफ़ का ज़िक्र किया है तो हज़रत इबराहीम (अलैहि.) की दास्तान का, जो क़ुरबानी और त्याग की दास्तान है, ज़िक्र किया है। उस दास्तान के किसी पन्ने को उठाकर देख लीजिए, अन्दाज़ा हो जाएगा कि हनीफ़ कैसा होता है।

उस दास्तान का पहला पन्ना देखिए। सितारे सामने आते हैं, चाँद निकलता है, सूरज आसमान पर चमकता है, हर एक में दिल अटक जाता है कि शायद यही इस लायक़ है कि इसको मक़सूद और महबूब बनाऊँ, शायद यही मेरा रब है। इसलिए कि रब के अलावा कौन महबूब, मक़सूद और मतलूब बन सकता है। सितारा डूब जाता है तो वे कह देते हैं, "मैं डूबनेवालों से मुहब्बत नहीं कर सकता" (क़ुरआन, 6:76) । डूबनेवालों से मुहब्बत का यह मतलब है कि जब वे डूबेंगे तो मैं भी डूबूँगा। मुझे तो कोई ऐसा मक़सूद चाहिए जिसके डूबने का कोई इमकान न हो, जिसके लिए मैं यकसू हो जाऊँ। चाँद चमकता है तो सोचते हैं कि यह इतना नूर

और रौशनी लेकर आया है, इतना बड़ा है! शायद यही मेरा मक़सूद हो। लेकिन वह भी डूब जाता है। जब सूरज अपनी गर्मी और रौशनी लेकर आसमान पर चमकता है तो ज़िन्दगी एकदम जाग उठती है। पौधों को, इनसानों को, हर एक को ज़िन्दगी की गर्मी मिलनी शुरू होती है तो मुँह से निकलता है, "यह है मेरा रब, यह सबसे बड़ा है" (क़ुरआन, 6:78)। लेकिन जब वह भी डूब जाता है तो कहते हैं—

> "मैंने तो यकसू होकर अपना रुख़ उस हस्ती की तरफ़ कर लिया जिसने ज़मीन और आसमानों को पैदा किया है, और मैं हरगिज़ शिर्क करनेवालों में से नहीं हूँ।" (क़ुरआन, 6:79)

यानी मैंने तो अपनी शख़्सियत का रुख़, अपना चेहरा, अपनी ज़िन्दगी, अपने आमाल, अपना दिल, सबका रुख़ उसकी तरफ़ कर लिया जिसने आसमान व ज़मीन को पैदा किया — गोया 'हनीफ़' होकर, सबसे कटकर, यकसू होकर सिर्फ़ उसी का हो गया हूँ और उसमें किसी को शरीक नहीं करता। ख़ुदा के अलावा किसी को सज्दा करना, किसी से मन्नत मानना, किसी दूसरे से मदद माँगना, शिर्क की क़िस्में हैं। लेकिन यहाँ पर शिर्क की एक नई क़िस्म का ज़िक्र किया गया है, यानी यह कि इनसान का रुख़ भी किसी दूसरे की तरफ़ न हो, बल्कि सिर्फ़ उसी (अल्लाह) की तरफ़ रहना चाहिए — न निगाह इधर, न उधर; न इसपर जमे, न उसपर।

पैदाइश से मौत तक ज़िन्दगी में न मालूम कितने सितारे चमकते हैं जिनमें दिल अटक जाता है। कितने चाँद हैं जिनका नूर निगाहों को खींच लेता है और कितने सूरज आसमान पर निकलते हैं जिनके आगे इनसान सजदे में गिर जाता है, लेकिन हक़ीक़त को देखनेवाली निगाह जानती है कि उनमें से हर चीज़ डूबनेवाली है। कोई इस बात की हक़दार नहीं कि इनसान, जिसमें कायनात के पालनहार ने ख़ुद अपनी रूह फूँकी है, उनमें से किसी को अपना मक़सूद व मतलूब और महबूब बनाए। वह तो एक ही हो सकता है जिसने आसमानों को पैदा किया, ज़मीन को पैदा किया और इनसान को पैदा किया। यह हनीफ़ की राह में पहला क़दम है, यानी अपना रुख़ ठीक कर लो, अपना क़िबला ठीक कर लो।

नमाज़

नमाज़ को देखिए। नमाज़ तो अल्लाह के बन्दे की पूरी ज़िन्दगी का—अगर एक कैप्सूल में बन्द करके देखना चाहें—अक्स और नमूना है। अगर क़िबले की तरफ़ रुख़ सही न हो तो नमाज़ फ़ासिद हो जाती है। अगर नमाज़ पढ़ते हुए क़िबला ग़लत हो और यह मालूम हो जाए कि सही क़िबला किधर है तो फ़ौरन क़िबले की तरफ़ रुख़ बदलना ज़रूरी है। नमाज़ में चेहरा भी क़िबले की ओर होता है और पेशानी भी। निगाहें भी क़िबले की तरफ़ होती हैं और हाथ भी रखते हैं तो उँगलियाँ क़िबले की तरफ़ ही होती हैं। ग़रज़ पूरे जिस्म का रुख़ क़िबले की तरफ़ होता है। जो अल्लाह का क़ुर्ब चाहता हो, यही उसकी ज़िन्दगी का नमूना है। अगर क़िबले की तरफ़ सही रुख़ न हो तो जिस तरह नमाज़ फ़ासिद हो जाती है उसी तरह ज़िन्दगी भी फ़ासिद हो जाती है। हालाँकि इसपर फ़साद, कुफ़्र, निफ़ाक़ और शिर्क का फ़तवा तो नहीं लगाया जा सकता, यह तो शरीअत का मामला है, लेकिन अल्लाह की निगाह में तो इसमें ख़राबी और फ़साद पैदा हो जाता है।

दौड़ो अल्लाह की तरफ़

सिर्फ़ रुख़ कर लेना ही काफ़ी नहीं है, बल्कि अल्लाह की तरफ़ लपककर जाओ। इसी लिए फ़रमाया –

"तो दौड़ो अल्लाह की तरफ़।" (क़ुरआन, 51:50)

शौक़ और बेक़रारी इसपर मजबूर कर दे कि तेज़ी के साथ आगे बढ़ो, दूसरों को पीछे छोड़ जाओ। ज़रा कभी आप अपने ज़ेहन में तस्वीर लाकर उस आदमी का तसव्वुर कीजिए जो किसी दौड़ में भाग रहा हो। उसका तो मक़सद यह होता है कि जल्दी से जल्दी पहुँचकर उस खम्बे को या उस लकड़ी को छू ले जिसपर जीतनेवाला सबसे पहले पहुँचता है। क्या इस दौरान उसके क़दम रास्ते से हटकर इधर-उधर जा सकते हैं? वह तो अपने रास्ते से हटकर एक इंच भी इधर-उधर नहीं जा सकता। मुमकिन है कि पीछे

रह जाए, मंज़िल तक न पहुँच सके, लेकिन क्या उसकी निगाह दाएँ और बाएँ मुड़ सकती है? नहीं! उसकी निगाह अपने गोल पर जमी रहती है। उसी की तरफ़ वह भागता रहता है। यही बात अल्लाह बन्दों से चाहता है। हम कितना चलते हैं, कितने मैदान मारते हैं, कितना गिरकर फिर उठते हैं और फिर दौड़ना शुरू कर देते हैं और जब उठते हैं तो फिर निगाह उसी पर जमी होती है, यह तो उसको बड़ा महबूब है। इसमें से कोई चीज़ भी मंज़िल खोटी नहीं करती। लेकिन निगाह हट जाए तो फ़रमाया –

"तुम इस दुनिया की चीज़ों की तरफ़ आँख उठाकर न देखो जो हमने इनमें मुख़्तलिफ़ क़िस्म के लोगों को दें रखी है।"

(क़ुरआन, 15:88)

नस्बुल-ऐन (लक्ष्य)

नस्बुल-ऐन का शब्द तो हम बहुत बोलते हैं। यह वह शब्द है जिसपर निगाह जाकर जम जाए या ठहर जाए। अल्लाह से क़रीब होने के लिए उसकी तरफ़ रुख़ करना और निगाह जमाना भी ज़रूरी है और लपकते हुए उसकी तरफ़ जाने की कोशिश करना भी ज़रूरी है। उसको सिवाय रुख़ करने और इरादे और कोशिश के कुछ मतलूब नहीं है। अगर मेरी बात का आप ग़लत मतलब न लें तो मैं यह कहूँगा कि उसको न नमाज़ मतलूब है और न रोज़े, न हज मतलूब है और न जिहाद। ये सब तो इस बात की अलामतें हैं कि रुख़ उसकी तरफ़ हो गया। कोशिश में लगे हुए हैं, कोशिश कर रहे हैं। गिरते हैं तो फिर उठते हैं और फिर उसी की तरफ़ चलना शुरू कर देते हैं। इसी लिए फ़रमाया –

"दौड़ो अल्लाह की तरफ़।" (क़ुरआन, 51:50)

अल्लाह ने अपनी तरफ़ आने के लिए जहाँ भी दावत दी है, हर जगह उसने वह शब्द इस्तेमाल किया है जिसमें जल्दी, तेज़ी, एक-दूसरे से आगे बढ़ने का जज़्बा और भागने का काम शामिल है। मिसाल के तौर पर एक जगह कहा, 'सारिऊ', यानी तेज़ी के साथ आओ। एक दूसरी जगह कहा,

'साबिक़ू', यानी एक-दूसरे से आगे बढ़ने की कोशिश करो। यह एक जगह खड़े होने की मंज़िल और रास्ता नहीं है। यह तो बराबर तेज़ी के साथ तय करने का रास्ता है। यह उसके क़रीब होने का रास्ता है। इसी लिए कहा कि सब कुछ उसी के लिए वक़्फ़ कर दो–

> "कहो, मेरे रब ने यक़ीनन मुझे सीधा रास्ता दिखा दिया है, बिलकुल ठीक दीन जिसमें कोई टेढ़ नहीं। इबराहीम का तरीक़ा जिसे यकसू होकर उसने इख़्तियार किया था, और वह शिर्क करनेवालों में से न था। कहो : मेरी नमाज़, मेरी तमाम इबादत की रस्में, मेरा जीना और मेरा मरना, सब कुछ अल्लाह रब्बुल आलमीन के लिए है जिसका कोई शरीक नहीं। इसी का मुझे हुक्म दिया गया है, और सबसे पहले मैं फ़रमांबरदारी करनेवाला हूँ।" (क़ुरआन, 6:161-163)

सीधा रास्ता

क़ुरआन मजीद की इन आयतों में 'दीने-क़य्यिम' के शब्द आए हैं। इससे मुराद सीधा और मज़बूत रास्ता है जो अल्लाह के पास ले जाएगा। इसलिए कि अल्लाह सीधे रास्ते पर मौजूद है –

> "बेशक मेरा रब सीधे रास्ते पर है।" (क़ुरआन, 11:56)

जैसे आप कहते हैं कि यह मकान इस रास्ते पर है। इस रास्ते पर चलेंगे तो मकान तक पहुँच जाएँगे। इसी तरह सीधे रास्ते पर रब मौजूद है और सीधा रास्ता रब तक पहुँचाता है। इसी लिए फ़रमाया कि यह इबराहीम का तरीक़ा है। हज़रत इबराहीम (अलैहि.) ही नमूना हैं, वे हनीफ़ हैं और शिर्क करनेवाले नहीं हैं। फिर फ़रमाया कि मेरी नमाज़ें, मेरी क़ुरबानियाँ, मेरा जीना, मेरा मरना सिर्फ़ अल्लाह के लिए है, जो सारे जहानों का रब है और इसमें मैं किसी को शरीक नहीं करता। और मुझे सबसे आगे बढ़कर पहल करनी है, आगे बढ़कर नमूना बनना है। मुझे इस रास्ते के ऊपर आगे ही आगे बढ़ना है, चलना है, पीछे नहीं रहना, बल्कि आगे रहना है। "मैं सबसे पहले फ़रमाँबरदार हूँ।"

जिसका क़ुर्ब हासिल करना मक़सद हो वह निगाह से भी इशारा कर दे कि यह करो और यह मेरी राह में दे दो तो आदमी कहे : हाज़िर हूँ, हुक्म मानने के लिए हाज़िर हूँ। मैं आपकी पुकार पर जो कुछ है वह पेश करने को तैयार हूँ—

> "अब कौन है जो इबराहीम के रास्ते से नफ़रत करे? जिसने ख़ुद अपने आपको बेवक़ूफ़ी और जाहिलियत में डाल लिया हो उसके सिवा कौन यह हरकत कर सकता है।"
>
> (क़ुरआन, 2:130)

इबराहीम (अलैहि.) का रास्ता क्या था? उसका हाल यह था कि जब उसके रब ने उससे कहा, "फ़रमाँबरदार बन जा।" तो उसने फ़ौरन कहा, "मैं कायनात के मालिक का फ़रमाँबरदार हो गया।"

इश्क़ व मुहब्बत

जब भी उसके रब ने कहा कि अपने आपको मेरे सुपुर्द कर दो, अपने आपको मेरे आगे डाल दो, मेरे आगे बिछा दो तो उसने कहा – हाज़िर! रब ने कहा, आग में कूद जाओ। अक़्ल होती तो हैरत के साथ यह मंज़र देखती रहती। यह तो मिलन की ख़ाहिश थी। मिलन की ख़ाहिश का नाम ही मुहब्बत और इश्क़ है, जो बे-ख़तर नमरूद की भड़काई हुई आग में कूद पड़ा। घर-बार छोड़ दिया। हक़ ने कहा बाप को छोड़ दो, उसने बाप को छोड़ दिया। रब ने कहा, बाप के लिए ख़ुदा से माफ़ी और रहमत की दुआ भी मत करो। उसने इसपर भी अमल किया। जहाँ पानी नहीं था, रेगिस्तान था, पहाड़ियाँ थीं, वहाँ अपने बाल-बच्चों को लेकर घूमते रहे। अल्लाह का पैग़ाम पहुँचाते रहे। ख़ुदा की तरफ़ से हुक्म हुआ कि बीवी और दूध पीते बच्चे को एक ऐसी जगह लाकर छोड़ दो कि जहाँ न पानी है न खेती, न ज़िन्दगी है न इनसान। इस हुक्म पर भी उसने अपना सिर झुका दिया। और जब आख़िर में फ़रमाया गया कि बेटे के गले पर छुरी रख दो तो बेटे से पूछा कि कहो तुम्हारी क्या राय है। बेटा भी बाप ही की तरह था। कहने लगा—

"अब्बा जान जो कुछ आपको हुक्म दिया जा रहा है, उसे कर डालिए। अगर अल्लाह ने चाहा तो आप मुझे सब्र करनेवालों में से पाएँगे।" (क़ुरआन, 37:102)

यह था नक़्शा और नमूना "मैंने अपने आपको रब्बुल-आलमीन के हवाले कर दिया" का।

कितनी बड़ी नेमत

जब आप अल्लाह के लिए यकसू हो जाएँ तो आप देखेंगे कि यह अल्लाह की कितनी बड़ी नेमत है। अल्लाह के क़ुर्ब से बड़ी नेमत क्या हो सकती है कि जिसका आप तसव्वुर करें! यह दिल, बिखरा हुआ और टूटा हुआ दिल, जो हज़ार क़िस्म की चिंताओं और परेशानियों के अन्दर गिरफ़्तार रहता है, यह ज़िन्दगी जो बिखरी हुई है और हज़ारों कामों के अन्दर गुज़रती है, यह सारी ज़िन्दगी एक ही काम के तहत हो जाएगी, और वह काम है अपने रब की ख़ुशनूदी की तलाश। आपने चुम्बक देखा होगा। चुम्बक को आप कहीं भी रख दें, लोहे के हज़ारों ज़र्रे और कण सिमटकर उसी चुम्बक के पास आकर जमा हो जाते हैं। फिर तो अल्लाह की ख़ुशी और अल्लाह हमारी ज़िन्दगी के लिए वह चुम्बक बन जाएगा जिसपर दिल की सारी सरगर्मियाँ, सारी भाग-दौड़ और कोशिशें आकर चिपक जाएँ। एक बिखरी हुई शख़्सियत और एक बिखरे हुए दिल के मुक़ाबले में एक यकसू और जमा हुआ दिल अल्लाह की बहुत बड़ी नेमत है। इसी लिए फ़रमाया –

"सुन लो! अल्लाह की याद ही वह चीज़ है जिससे दिलों को इत्मीनान नसीब हुआ करता है।" (क़ुरआन, 13:28)

जब महबूब की याद दिल में होती है तो दिल यकसू हो जाता है, बिखरा हुआ नहीं रहता। फिर उसको इत्मीनान नसीब होता है, और इत्मीनान से बड़ी कोई नेमत नहीं जो इनसान को मिल सके।

यह अल्लाह की ख़ुशी की तलाश इसलिए है कि उसी का क़ुर्ब चाहिए, उसी की नज़रों में महबूब, मतलूब और मक़बूल बनना मक़सूद है। यह मंज़िल तो मुहब्बत के सहारे ही तय हो सकती है। अक़्ल यह तो बता सकती है कि यह रास्ता चलने का है, लेकिन वह लगाम थाम के मुहब्बत के रास्ते पर चला नहीं सकती। यह तो इश्क़ ही है जो कभी हुसैन बनता है, कभी ख़लील, कभी बद्र व हुनैन बनता है, कभी उहुद। यह इश्क़ व मुहब्बत ही हैं जो अस्ल में मंज़िल का रास्ता तय कराते हैं। इसी लिए फ़रमाया –

> ''ईमान रखनेवाले लोग सबसे बढ़कर अल्लाह से मुहब्बत रखते हैं।'' (क़ुरआन, 2:165)

यानी जिन्होंने ईमान लाकर अल्लाह को ही अपना मक़सूद बना लिया, वे सबसे बढ़कर अल्लाह से मुहब्बत करते हैं। उनको सबसे बढ़कर अल्लाह से प्यार होता है। अल्लाह ही की मुहब्बत उनके दिलों में घर किए होती है।

मुहब्बत क्या चीज़ है, किसको बताने की जरूरत है! कौन-सा ऐसा बदक़िस्मत इनसान होगा जिसने कभी किसी मुहब्बत का मज़ा न चखा हो। मुहब्बत को उसी तरह बयान करना मुमकिन नहीं है जिस तरह यह बयान करना मुमकिन नहीं है कि भूख, प्यास और ख़ाहिश क्या होती है। यह तो आदमी अपने दिल के तजुर्बे से जानता-पहचानता है। उसके लिए फ़ल्सफ़े (दर्शन) की, किसी केमिस्ट्री या गणित के फ़ार्मूले और किसी दलील की ज़रूरत नहीं होती। दिल की गहराइयों से आदमी ख़ूब पहचानता है कि मुहब्बत क्या है। ज़बान से वह कितने ही दावे कर ले और बाहर से वह कितने ही ग़िलाफ़ ओढ़ ले और कितने ही मुहब्बत के नारे लगाए, लेकिन वह दिल से जानता है कि मुहब्बत क्या है। अगर कोई आपसे मुहब्बत का दावा करे तो आप ख़ूब जानते हैं कि आप किन दावों को उठाकर फेंक देते हैं और कहते हैं कि नहीं, अगर मुझसे मुहब्बत होती तो तुम ऐसा नहीं कर सकते थे। मेरा दिल पहचान लेता है कि वाक़ई यह मुहब्बत है या नहीं।

जब आपका और हमारा दिल मुहब्बत को पहचान लेता है तो क्या अल्लाह नहीं जानता और पहचानता कि मुहब्बत के कौन से दावे सच्चे और कौन से दावे कच्चे और झूटे हैं!

मुहब्बत की पहचान

जिससे मुहब्बत होती है, ध्यान तो उसी की तरफ़ लगा रहता है। दिल में हर वक़्त उसी की सूरत घूमती रहती है। हर लम्हा दिल चाहता है कि किसी बहाने से उसका ज़िक्र छिड़े। हम बात न कर रहे हों तो कोई दूसरा ज़िक्र छेड़े। कोई दूसरा नहीं करता तो हम ज़िक्र छेड़ें। मजलिस हो या तन्हाई, एकान्त हो या लोगों का हुजूम, उसी का ज़िक्र हो।

जो सबसे बढ़कर अल्लाह से मुहब्बत करते हैं, जिन्होंने रुख़ अल्लाह की ओर कर लिया हो, जो अल्लाह की तरफ़ भाग रहे हों, जिन्होंने अपना सब कुछ अल्लाह के लिए वक़्फ़ कर दिया हो, वे तो उठते, बैठते, लेटते, हर हाल में अल्लाह को याद करते हैं। कोई हालत ऐसी नहीं होती जो अल्लाह की याद से ख़ाली हो। यही अक़्लमन्दी की बात है। अक़्लवालों के लिए फ़रमाया—

> "ज़मीन और आसमानों की पैदाइश में और रात और दिन के बारी-बारी से आने में उन अक़्लवालों के लिए बहुत-सी निशानियाँ हैं जो उठते, बैठते और लेटते हर हाल में अल्लाह को याद करते हैं और ज़मीन व आसमानों की बनावट में सोच-विचार करते हैं।" (क़ुरआन, 3:190-191)

ऐसा सिर्फ़ तस्बीहें और दुआएँ याद करने और नसीहत करने से नहीं होता। यह कैफ़ियत मुहब्बत से हासिल होती है। जो महबूब होगा उसकी याद दिल में होगी, उसका ज़िक्र ज़बान पर होगा और उसका ज़िक्र अमल और बर्ताव में भी आएगा। अल्लाह की तस्वीर देखी तो नहीं जा सकती, लेकिन जो अपनी रहमत में, अपनी पालन-क्रिया (रबूबियत) में हर जगह ज़ाहिर है, उसी की तस्वीर निगाहों के सामने आती है। आसमान और ज़मीन में कौन-सा गोशा ऐसा है जहाँ उसकी रहमत व मेहरबानी और

उसकी नवाज़िश और नेमत ज़ाहिर न हो और आदमी देख न सकता हो। वह उठते-बैठते, सुबह-शाम अल्लाह को याद नहीं करेगा तो फिर और क्या करेगा?

जिससे मुहब्बत होती है, उससे सिर्फ़ मुलाक़ात की ख़ाहिश ही नहीं होती, बल्कि ख़ाहिश तो बहुत हल्का लफ़्ज़ है, बेताबी, शौक़ और बेचैनी होती है, और अगर वह ख़ुद बुला ले तो आदमी सिर के बल उसके दर पर जाता है। वैसे भी गली के चक्कर लगाता रहता है, पहले से जाकर बैठता है। लेकिन अगर वह ख़ुद बुला ले और दावत दे कि मेरे पास आओ तो मुहब्बत करनेवाले के लिए इससे ज़्यादा दिलपसन्द बात और क्या हो सकती है! उसके एक-एक लफ़्ज़ को दोहराता जाता है, हर पुकार के हर जुमले को ज़बान से दोबारा कहता है। इसी में उसको लज़्ज़त और मज़ा मिलता है। उसकी गली और घर की तरफ़, जिसको 'मस्जिद' कहते हैं, क़दम उठाना शुरू कर देता है। उसके लिए पाँच वक़्त की नमाज़ बोझ तो नहीं बन सकती। ऐसा आदमी नमाज़ इस तरह अदा नहीं कर सकता जैसे कोई बोझ सिर से उतार दिया और घर की राह ली।

ऐसा नहीं हो सकता कि आदमी जैसा नमाज़ के लिए गया वैसा ही नमाज़ से वापस आ जाए। क्या मुहब्बत करनेवाले की कुर्बत, मुहब्बत करनेवाले से बात-चीत ऐसी चीज़ है कि आदमी उस पूरे तजुर्बे से गुज़र जाए और वैसा का वैसा ही वापस आ जाए जैसा कि वह उससे पहले था। इसी लिए नबी (सल्ल.) ने फ़रमाया कि अगर किसी के दरवाज़े पर नहर बह रही हो और वह पाँच बार उसमें ग़ुस्ल करे तो क्या उसके ऊपर कोई गंदगी का दाग़ बाक़ी रह सकता है? आदमी जो गंदगियाँ लेकर महबूब के पास जाए, मुलाक़ात को हाज़िर हो और वही गंदगियाँ वापस लेकर आ जाए तो इसका मतलब है कि मुहब्बत में कमी है, याद में कमी है और अभी मुहब्बत के तक़ाज़ों का एहसास और शऊर नहीं है।

जिससे मुहब्बत होती है, जिस चीज़ को भी उससे निसबत हो जाए उससे भी मुहब्बत होती है। वह उसका दरवाज़ा हो, उसका घर हो, चाहे

बहुत मामूली-सा घर हो, ऐसे पत्थरों से बना हो जिनको कोई कारीगर उठाकर आपके मकान में नहीं लगाएगा, ग़रज़ हर चीज़ प्यारी हो जाती है।

उसका ख़त आ जाए, उसकी किताब आ जाए तो उससे भी मुहब्बत हो जाती है। उसका पैग़म्बर आ जाए, उसकी तरफ़ चलने का रास्ता बतानेवाला आ जाए, रहबर या रहनुमा आ जाए तो वह जान व माल से और माँ-बाप से ज़्यादा महबूब हो जाता है। इसी लिए अल्लाह के नबी (सल्ल.) ने फ़रमाया कि तुममें से कोई ईमानवाला नहीं हो सकता जब तक कि मैं उसको उन सब में से हर चीज़ से ज़्यादा प्यारा और महबूब न हो जाऊँ।

लोग क़ुरआन मजीद पढ़ते थे और रात-रात भर उसकी तिलावत में गुज़ार देते थे। रातें तो आदमी महबूब के साथ ही लज़्ज़त और मस्ती में गुज़ार सकता है, फ़ल्सफ़े और तर्कशास्त्र पढ़कर नहीं। यही वजह है कि उनकी पूरी रात इसी किताब क़ुरआन मजीद की नज़्र हो जाती थी। कानों में आवाज़ पड़ती थी तो महबूब से ताल्लुक़ बढ़ता हुआ महसूस होता था। ईमान बढ़ता हुआ महसूस होता था। दिल काँप उठते थे। आँखों से आँसू जारी हो जाते थे। रोंगटे खड़े हो जाते थे। खालें और दिल सब नर्म पड़ जाते थे। यह भी मुहब्बत और इश्क़ का ही करिश्मा था।

काबा क्या है? ख़ुदा सिर्फ़ काबा में ही नहीं है, वह तो हर जगह मौजूद है। काबा से बढ़कर तो वह मोमिन के दिल में रहता है। लेकिन आदमी हज़ारों मील का सफ़र तय करके वहाँ पहुँचता है। दो चादरें लपेट लेता है। दीवाने की तरह उसके घर का चक्कर लगाता है, मगर चैन नहीं आता। काले-गोरे क़दमों को आदमी देख ले जो काबा के चारों ओर घूमते हैं, हर क़दम पर दिल चाहता है कि आदमी फ़िदा हो जाए। किस चीज़ ने एक चौकोर घर को, जिसमें तामीर के फ़न (निर्माण-कला) का कोई कमाल नहीं है, इतना महबूब बना दिया। सिर्फ़ इसलिए कि यह घर उससे निस्बत रखता है जो अब ज़िन्दगी का मक़सूद बन गया है। जिसकी तरफ़ ज़िन्दगी ने रुख़ कर लिया है। दिल ने भी रुख़ कर लिया है। चेहरे ही

नहीं, बल्कि पूरी ज़िन्दगी ने रुख़ कर लिया है और जो सबसे बढ़कर महबूब और मतलूब हो गया है। फिर उसके दीन से बढ़कर क्या महबूब हो सकता है!

जिससे मुहब्बत होती है तो दिल यह चाहता है कि कुछ भी करें, बस किसी तरह उसको ख़ुश करें। उसकी निगाहे-ख़ुशनूदी बस हमारी तरफ़ मुतवज्जोह हो जाए। लोग महबूब की ख़ातिर जेबें खोल देते हैं। महबूब के लिए लम्बे-लम्बे रास्ते तय करते हैं। महबूब के लिए जिद्दोजुहद करते हैं। अल्लाह की राह में माल देना, अल्लाह की राह में जान लड़ाना, यह भी तो मुहब्बत की कसौटी पर पूरा उतर सकता है। इसी लिए फ़रमाया : क्या चीज़ ज़्यादा प्यारी है – बाप, बेटे, बीवियाँ, रिश्तेदार, कारोबार, मकान, खेतियाँ, माल–दौलत, बैंक बैलेंस या अल्लाह और उसका रसूल और उसकी राह में जिद्दोजुहद करना? इनमें से क्या चीज़ प्यारी है? यह सवाल नहीं है कि तुम किस चीज़ के अक़्ली तौर पर ज़्यादा क़ायल हो? मुहब्बत किससे ज़्यादा है? मुहब्बत तो ख़ुद परखकर बता देगी कि कौन ज़बान से नाम ले रहा है और किसके दिल में उसकी प्यास और मुहब्बत मौजूद है। ज़बान से ऐसे दावे और बातें करने से डरना चाहिए जिसका वुजूद दिल में न हो। इस सिलसिले में क़ुरआन मजीद की यह आयत दिल दहला देनेवाली है–

> "ऐ नबी! जब ये मुनाफ़िक़ तुम्हारे पास आते हैं तो कहते हैं कि हम गवाही देते हैं कि आप यक़ीनन अल्लाह के रसूल हैं। हाँ, अल्लाह जानता है कि तुम ज़रूर उसके रसूल हो, मगर अल्लाह गवाही देता है कि ये मुनाफ़िक़ बिलकुल झूठे हैं।"
>
> (क़ुरआन, 63:1)

ज़बान से सच बात निकली है लेकिन अल्लाह की गवाही की मुहर लग चुकी है कि ज़बान से सच्ची बात निकलने के बावजूद ये लोग झूठे हैं।

मुहब्बत की ये कुछ निशानियाँ मैंने आपके सामने रखी हैं। आपका हर लम्हा उससे क़रीब होने की कोशिश में गुज़रना चाहिए। मैं इस दास्तान को

और लम्बी नहीं करनी चाहता। जब महबूब ऐसा हो जिसके इनामों की कोई हद न हो तो ऐसे महबूब के क्या कहने! कुछ महबूब तो रूठे हुए होते हैं। यह महबूब तो ऐसा है कि एक शायर कहता है –

"जितना तू नेमतें करके हमको अपने से और अपनी मुहब्बत से क़रीब करता है, उतना ही हम गुनाह करके तुझसे दूर होते हैं।"

जितने हम गुनाह करते हैं, उसकी नेमतें उतनी ही हमपर ज़्यादा होती हैं। और जब गुनाह होता है और लौटकर उसके पास जाते हैं तो उसको इससे ज़्यादा ख़ुशी होती है कि किसी रेगिस्तान में जहाँ आदमी के पास न खाने को हो, न पीने को और ऊँट गुम हो गया हो और फिर अचानक सारी चीज़ें उसको मिल जाएँ।

अल्लाह फ़रमाता है कि कौन-सा गुनाह ऐसा है जो हम माफ़ नहीं कर सकते –

"बेशक अल्लाह सारे गुनाह माफ़ कर देता है।"

(क़ुरआन, 39:53)

क्या तुम्हारे गुनाह हमारी मग़फ़िरत से ज़्यादा वसीअ़ (विस्तृत) हो सकते हैं? एक सहाबी मस्जिद में आए और कहा कि हाय मेरे गुनाह! हाय मेरे गुनाह! वे रोते, चीख़ते-चिल्लाते और तड़पते थे। नबी (सल्ल.) ने कहा कि अच्छा बैठ जाओ और कहो –

अल्लाहुम-म इन-न मग़फ़ि-र-त-क अव-स-उ मिन ज़ुनूबी व रह्म-त-क अरजू इन्दी मिन अमल।

"ऐ अल्लाह, तेरी मग़फ़िरत मेरे सारे गुनाहों से ज़्यादा वसीअ़ है और मेरी उम्मीदें अपने आमाल से नहीं, तेरी रहमत से वाबस्ता हैं।"

नबी (सल्ल.) ने फ़रमाया कि ऐसा तीन बार कहो। फिर फ़रमाया, खड़े हो जाओ। तुम्हारे सारे गुनाह माफ़ हो गए हैं।

शुक्र

जिस ख़ुदा की नेमतें इतनी हों, आदमी उसका जितना भी शुक्र अदा करे वह कम है। शुक्र पर तो क़ुर्ब की पूरी ज़िन्दगी क़ायम है। शुक्र अदा करने से मुहब्बत बढ़ती है। और मुहब्बत बढ़ने से आदमी और ज़्यादा शुक्रगुज़ार हो जाता है। ये दोनों एक-दूसरे को बढ़ाते चले जाते हैं। क़ुर्बत की तलाश की शुरुआत ही शुक्र से होती है। क़ुर्बत का नुस्ख़ा बतानेवाली किताब (क़ुरआन) की शुरूआत भी 'अल्हमदुलिल्लाहि रब्बिल आलमीन'' (शुक्र और तारीफ़ अल्लाह ही के लिए है जो सारे जहानों का रब है) से होती है कि जो कुछ है, उससे ही मिला है। मुँह में निवाला या लुक़मा हम नहीं रखते—

''वही खिलाता और वही पिलाता है।''

(क़ुरआन, 26:79)

मरीज़ अच्छा दवा से नहीं होता—

''मैं बीमार होता हूँ तो वही अच्छा करता है।''

(क़ुरआन, 26:80)

तदबीर और उपाय हम नहीं करते बल्कि—

''अल्लाह ने फेंका।'' (क़ुरआन, 8:17)

यानी बद्र की लड़ाई में जब नबी (सल्ल.) ने दुश्मनों पर मुट्ठी भर धूल फेंकी थी तो हाथ नबी का था लेकिन मार अल्लाह की थी। तदबीर में हर जगह उसी का हाथ काम करता है। जो कुछ मिलता है उसी से मिलता है। सुबह हो तो शुक्र, शाम हो तो शुक्र, रात हो तो शुक्र, कपड़ा पहनें तो शुक्र, खाना शुरू करें तो शुक्र। यहाँ तक कि गुनाह के बाद अगर माफ़ी माँगने और मग़फ़िरत तलब करने की तौफ़ीक़ हो तो उसपर भी शुक्र।

शुक्र अदा करना और मग़फ़िरत चाहना ये दो बाज़ू हैं जिनके बल पर ज़िन्दगी का परिन्दा अल्लाह का क़ुर्ब (सामीप्य) हासिल कर सकता है।

नबी (सल्ल.) की जिद्दोजुहद बिलकुल आख़िरी मरहले में थी। जब जिद्दोजुहद का क़ुर्ब तो ख़त्म हो रहा था और अल्लाह का क़ुर्ब होनेवाला था, उस वक़्त आप (सल्ल.) को हिदायत की गई—

> "अपने रब का शुक्र के साथ महिमागान करो और उससे मग़फ़िरत की दुआ माँगो।" (क़ुरआन, 110:3)

महबूब से मुलाक़ात

जिससे मुहब्बत है वह दुनिया में आँखों के सामने नहीं है, लेकिन उसने यह वादा फ़रमाया है कि एक दिन तुमसे मुलाक़ात होगी। कौन-सा मुहब्बत करनेवाला ऐसा है जिसने उसको अपना क़िबला और मक़सूद बनाया हो, अपनी ज़िन्दगी का रुख़ उसकी तरफ़ किया हो, और वह इस बात को भूल जाए कि यह साँस जो बाहर गई है शायद यही आख़िरी साँस हो जिसके बाद उससे मुलाक़ात मुक़र्रर है। वह कैसे इस बात को भूल सकता है कि शायद इसी सुबह के बाद बुलावा आ जाए और वह अपनी मुलाक़ात के लिए बुला ले। शायद यही शाम आख़री शाम हो और इसके बाद उससे मुलाक़ात हो जाए। अल्लाह से मुलाक़ात का बराबर ध्यान, अल्लाह से मुलाक़ात की बराबर तैयारी, सुबह हो तो शाम का इन्तिज़ार न करे, शाम हो तो सुबह का इन्तिज़ार न करे, यह भी अल्लाह को अपने क़ुर्ब के लिए मतलूब है।

करने के काम

मैं बड़े-बड़े आमाल आपके सामने नहीं रख रहा। मैं तो आपसे यह कहता हूँ कि ये वे कैफ़ियतें हैं जो ख़ुद आमाल का वसीला बनेंगी। इख़लास (निष्ठा) होगा, अल्लाह की तरफ़ रुख़ होगा, अल्लाह की तरफ़ तवज्जोह होगी, अल्लाह ही को अपना मक़सूद बनाएँगे, उससे सबसे बढ़कर मुहब्बत होगी, इसलिए कि यह ईमान की निशानी है। उसी की याद ज़बान पर, दिल में, अमल में, हर वक़्त छाई रहेगी तो आमाल का रास्ता ख़ुद-ब-ख़ुद खुलेगा। जो चाहते हैं कि इसके बग़ैर बड़े-बड़े काम कर

जाएँ, उनको बड़ी मुश्किल पेश आएगी। जो अल्लाह के लिए यकसू हो जाएँ, हनीफ़ बन जाएँ, उसी के बन जाएँ, उसके हो रहें, जिनकी नज़र सिर्फ़ इसपर रहे कि अल्लाह क्या चाहता है, उनके लिए इस रास्ते की हर मंज़िल बड़ी आसान होती है।

यह तो एक कैफ़ियत है कि नज़र उसके करीम चेहरे पर रहे कि वह ख़ुश किस चीज़ से होता है ? मैं क्या करूँ जिससे मुझे यह नसीब हो जाए ? इसमें एक लज़्ज़त है। अल्लाह के आख़िरी नबी (सल्ल.) तो इसी की दुआ किया करते थे। कहा करते थे –

अल्लाहुम-म इन्नी अस-अलु-कर्रिज़ा बिल-क़ज़ा, व बरदल-ऐशि बअ्दल-मौत, व लज़्ज़तन-न-ज़-रि इला वजहि-कल-करीम, वशौक़ि इला लिक़ाइक।

"ऐ अल्लाह, मैं तुझसे माँगता हूँ कि तेरे हर हुक्म पर राज़ी रहूँ। मौत के बाद ज़िन्दगी की लज़्ज़त नसीब हो। तेरे करीम चेहरे को देखने की लज़्ज़त मिले और तुझसे मुलाक़ात की तमन्ना करूँ।" (यह भी मुहब्बत का एक तक़ाज़ा है।)

(हदीस : तिरमिज़ी)

आरज़ुएँ, तमन्नाएँ बताती हैं कि क्या चीज़ें अल्लाह से क़रीब करने वाली हैं। जो बातें मैंने आपके सामने बयान की हैं, उन्हीं बातों को अल्लाह के नबी (सल्ल.) की एक और दुआ बड़े दिलनवाज़ अन्दाज़ में समेटकर हमारे सामने रख देती है –

रब्बिज-अलनी ल-क ज़क्कारा, ल-क शक्कारा, ल-क रह्हाबा, ल-क मितवाआ, ल-क मुतीआ, इलै-क मुख़बितन इलै-क अव्वाहम-मुनीबा।

"मेरे रब, मुझे ऐसा बना दे कि मैं तुझे बहुत याद करूँ। तेरा बहुत शुक्र करूँ। तुझसे बहुत डरा करूँ। तेरी बहुत फ़रमाँबरदारी

किया करूँ। तेरा बहुत कहा मानूँ। तेरे आगे झुका रहूँ और आह! आह! करता हुआ तेरी तरफ़ लौट आया करूँ।"

जब्बार, क़हहार, ग़फ़्फ़ार अरबी ज़बान के अलफ़ाज़ अधिकता और कमाल को ज़ाहिर करते हैं। अधिकता से याद करनेवाला। अधिकता से तेरा शुक्र करनेवाला, और शुक्र तो ख़ुद ही ज़िक्र है। 'मुतीअ' और 'मुतव्विअ' में एक बड़ा नाज़ुक और बड़ा अहम फ़र्क़ है। 'मुतीअ' तो वह है जो कहना मान ले और इताअत कर ले, और 'मुतव्विअ' वह है जो दौड़-दौड़कर अपने दिल की ख़ुशी से वह काम करे जिसका हुक्म नहीं दिया गया, जिसको लाज़िम नहीं किया गया और जो फ़र्ज़ के दायरे में नहीं रखा गया। जैसे कोई ग़ुलाम इस इन्तिज़ार में बैठा हो कि कौन-सा मौक़ा ऐसा निकल आए और कौन-सी चीज़ ऐसी हो जिसे मैं करूँ और मालिक को ख़ुश कर दूँ, और इस हाल में करूँ कि उसके बाद भी दिल उसी के आगे झुका रहे, और फिर भी यह मालूम हो कि हक़ अदा नहीं हुआ।

यही वे चीज़ें हैं जो बड़े-बड़े आमाल नहीं हैं, लेकिन जो बड़े-बड़े आमाल को आसान करती हैं। इन्हीं आमाल में से एक अमल रात की इबादत है। यह फ़र्ज़ तो नहीं है लेकिन आप जानते हैं कि रात का वक़्त ही वह वक़्त है जब आदमी अपने महबूब से बातचीत करने की ख़ाहिश करता है। यह सबसे बेहतरीन वक़्त है। इसी लिए अल्लाह ने फ़रमाया है कि जो हमारे मोहसिन और मुत्तक़ी (परहेज़गार) बन्दे हैं वे रातों को कम सोते हैं (क़ुरआन, 51:17)। "रात के पिछले पहरों में माफ़ी माँगते हैं" (क़ुरआन, 51:18)। उनकी पीठें बिस्तरों से अलग रहती हैं (क़ुरआन, 32:16)।

बात सिर्फ़ यहीं ख़त्म नहीं हो जाती। बड़ी अजीब और ग़ौर करने की बात है कि जहाँ भी अल्लाह ने रात में अपने से बात करने का ज़िक्र किया है, वहाँ दिन में अपने बन्दों के लिए दिल खोलकर माल ख़र्च करने का भी ज़िक्र किया है। हमेशा दोनों साथ-साथ आए हैं। फ़रमाया—

"ये लोग सब्र करनेवाले हैं, सच्चे हैं, फ़रमाँबरदार हैं, ख़र्च करनेवाले (दानी) हैं, और रात की आख़री घड़ियों में अल्लाह से मग़फ़िरत की दुआएँ माँगा करते हैं।" (क़ुरआन, 3 : 17)

"रातों को कम ही सोते थे, फिर वही रात के पिछले पहरों में माफ़ी माँगते थे। और उनके मालों में हक़ था माँगनेवाले और महरूम के लिए।" (क़ुरआन, 51:17-19)

यानी उनके पहलू बिस्तर से दूर रहते हैं। अल्लाह के डर और लालच से माँगते हैं और जो रोज़ी ख़ुदा ने दी है उसमें से ख़ुदा की राह में ख़र्च करते हैं। यही मुहब्बत का तक़ाज़ा है। एक तरफ़ अल्लाह की मुहब्बत हो और फिर माल की इतनी मुहब्बत हो कि जेब न खुले और दिल न खुले, ये दोनों चीज़ें जमा नहीं हो सकतीं। ईमान और कंजूसी जमा नहीं हो सकते। जिसके अन्दर ईमान होगा, उसमें अल्लाह की मुहब्बत होगी, सबसे बढ़कर होगी, और जिसके पास अल्लाह की मुहब्बत सबसे बढ़कर होगी उसका दिल फ़य्याज़ (दानी) होगा, वह वक़्त भी देगा और माल भी देगा। उसके पास जो कुछ होगा उसे वह अल्लाह के बन्दों के लिए, उनकी मदद के लिए, उनको सही रास्ते पर लाने के लिए, अद्ल व इनसाफ़ का निज़ाम क़ायम करने के लिए, सब कुछ लगाने के लिए तैयार होगा।

बहुत-से लोग समझते हैं कि अल्लाह का क़ुर्ब हासिल करना बड़ी मुश्किल चीज़ है। यह तो बड़े ऊँचे दरजे के लोगों का काम है। यह तो अल्लाह के वलियों के हिस्से में आ सकता है । लेकिन अल्लाह ने तो अपना दरवाज़ा हर एक के लिए खोल दिया है। वह तो ख़ुद नीचे दुनिया के आसमान पर आता है और कहता है कि आओ और मुझसे माँगो। वह बस इतना ही तो चाहता है कि रुख़ मेरी तरफ़ कर लो। चलो तो मेरी तरफ़ चलो। गिर पड़ो, लड़खड़ा जाओ, बहक जाओ, कोई बात नहीं है। जब तौबा कर लोगे, मेरी तरफ़ पलटकर आओगे तो मेरी रहमत की गोद को खुला हुआ पाओगे। यहाँ तक कि जान बदन से निकलने लगे उस वक़्त

तक तौबा का दरवाज़ा खुला रहेगा। अल्लाह कहता है कि मैं हाथ फैलाता हूँ कि आओ दिन भर जो गुनाह किए हैं, उनकी माफ़ी माँग लो। उससे बढ़कर किससे कुर्ब का रास्ता आसान हो सकता है। वह तो रहमान और रहीम है, बेजा सख़्ती नहीं करता। बस इतनी ही बात की ज़रूरत है कि उसी के बन जाएँ, उसी के हो रहें और उसी की राह पर चलें। अगर गिर पड़ें तो फिर खड़े हो जाएँ, और फिर उसी की तरफ़ देखें और उसी की तरफ़ चलना शुरू कर दें।

अल्लाह मुझे और आप सबको इसकी तौफ़ीक़ दे।

आमीन !